(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

एक अंक का ।)

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ८] मथुरा, १ अक्टूबर सन् १९४७ ई० [अंक १०

सुखी और समृद्ध बनने का मार्ग परिश्रम है।

सुखी और समृद्ध बनाने वाले साधन-रत्न-हर दिशा में पर्याप्त संख्या में मौजूद हैं। मनुष्य का मनुष्य से सहयोग होने पर एक से एक बढ़िया आनन्द दायक अवसर उपलब्ध होते हैं, मित्रता, प्रेम, प्रतिष्ठा, आदर, सेवा, सहायता, दान, उदारता, मधुरता आदि के द्वारा आपसी सहयोग होने पर सामाजिक जीवन में ऐसे २ आनन्द मय अवसर उपस्थित होते हैं जिन्हें 'रत्न' से किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। विद्या की दिशा में लीजिए अध्ययन, ज्ञान विशेषज्ञता के कारण मनुष्य जितना सूक्ष्म एवं समर्थ होजाता है वह महत्ता भी जवाहिरातों के थैले की महत्ता से कम नहीं है। उत्तम स्वास्थ्य का, निरोगता का प्राप्त होना एक बेश कीमती हीरा है। आर्थिक स्थिति का अच्छा होना, अच्छा व्यवसाय मिल जाना, एक ऋद्धि समझी जाती है। सद्गुण, मीठा स्वभाव, भले विचार, सुन्दर चरित्र बहुमूल्य हीरक हारों की भांति विभूषित करने वाले आभूषण हैं। आत्मिक आनन्द, प्रसन्नता, सन्तोष, निराकुलता एवं जीवन-मुक्ति, सृष्टि की सर्वोच्च सम्पदा है। इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में विभिन्न प्रकार के अनमोल जवाहर पग पग पर बिखरे पड़े हैं। इनमें से अपनी योग्यता की प्रमाणिकता के आधार पर हर मनुष्य मन चाही मात्रा में प्राप्त कर सकता है। यह योग्यता की प्रामाणिकता जिसकी वजह से जीवन को आनन्दमय बनाने के साधन प्राप्त होते हैं—केवल परिश्रमशीलता ही है।

शास्त्र मंथन का नवनीत।

सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितं
स्वयं च बुद्ध्या प्रविचारितं पुनः
करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान्
स एव सौख्यं बहुधा समश्नुते ॥

मित्रों और बुद्धिमान पुरुषों से बार बार सम्मति लेकर और स्वयं अपनी बुद्धि से विचार कर जो पुरुष काम करता है वह बुद्धिमान् कहलाता है और सदा सुख पाता है।

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा, तन्द्रा, भयं, क्रोध, आलस्यं, दीर्घसूत्रता ॥

नींद, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और देरी से काम करना, ये छः दोष ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुषों को त्यागने योग्य हैं।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥

पुरुषों को इन छः गुणों को कभी न छोड़ना चाहिये—सत्य, दान, आलस्यहीनता, दूसरों में दोष न देखना, क्षमा और धैर्य।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचित्
उद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा
धुरन्धरं तस्य विपद्विनश्येत् ॥

विपत्ति आने पर कभी दुःखी न हो, बल्कि सावधान होकर उसके टालने का उद्योग करे। जो महात्मा समय पर दुःख सह लेता है वह संसार के भार को सहन कर सकता है, और उसकी विपत्ति भी नष्ट हो जाती है।

तावद्भयेन भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कया ॥

जब तक भय नहीं आवे तभी तक उससे डरना चाहिए, भय उपस्थित होने पर तो निश्शङ्क

न यस्य चेष्टितं विद्यात् न कुलं न पराक्रमम्।
न तस्य विश्वसेत् प्राज्ञो यदीच्छेच्छ्रेय आत्मन ॥

जिसकी चेष्टा, कुल और पराक्रम न मालूम हो, बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि यदि अपना कल्याण चाहे तो उसका कभी विश्वास न करे।

अत्यादरो भवेद्यत्र कार्य-कारण-वर्जितः।
तत्र शंका प्रकर्तव्या परिणामेऽसुखावहा ॥

जहाँ बिना कारण अत्यन्त आदर हो, वहाँ परिणाम में दुःख होने की शङ्का करनी चाहिए क्योंकि बिना मतलब कोई खुशामद नहीं करता।

असती भवति सलज्जा
क्षारं नीरं च निर्मलं भवति।
दम्भी भवति विवेकी
प्रियवक्ता भवति धूर्तजनः ॥

कुलटा स्त्री लज्जावन्ती बनती है, खारा पानी साफ और ठण्डा होता है, पाखंडी आदमी विवेकी बनता है और मधुर बोलने वाला प्रायः धूर्त होता है।

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पाप इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥

जो भेद कराने वाले, मतलबी, निर्लज्ज, दुष्ट और पापी हैं, उनका साथ कभी न करना चाहिए।

देशाटनं राजसभा वेशनं शास्त्रचिंतनम्।
वेश्यादिसङ्गति विद्वन्मैत्रीं कुर्यादतन्द्रितः ॥

देशान्तरों में भ्रमण, राजसभा में जाना, शास्त्र का विचार करना, वैश्यों से संगति और विद्वानों से मित्रता, ये बातें आलस्य छोड़ कर करनी चाहिए।

देशांतरेषु बहुविधभाषावेषादि येन न ज्ञातम्।
भ्रमता धरणीपीठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम् ॥

जिसने देशान्तरों में जाकर अनेक प्रकार की भाषा और वेषादि का ज्ञान न प्राप्त किया, पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए [illegible]

विद्या और ब्राह्मण।

(श्री० नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ)

विद्या ह वै ब्राह्मणमा जगाम गोपाल मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्॥

विद्या ब्राह्मण के पास आई और कहने लगी-ब्रह्मन्, मेरा निवेदन सुनो!

ब्राह्मण-क्या आज्ञा है, भगवती!

विद्या-मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारा कोष हूं।

ब्राह्मण-मैं तुम्हारी रक्षा अब किस प्रकार करूं? अब तक तुम्हारी रक्षा के लिए ही मेरे तन-मन-धन-प्राण व्यय हुए हैं। मेरे पूर्वज तुम्हारी रक्षा में ही अनन्त काल से संलग्न रहे हैं। कहो देवि! क्या कष्ट है? तुम्हारी रक्षा में क्या त्रुटि है?

विद्या-ब्रह्मन् आपसे यही प्रार्थना है कि आप निन्दक, कुटिल स्वभाव वाले, ब्रह्मचर्य्य-व्रत-शून्य शिष्यों को कभी न पढ़ाइए। यदि आप इस बात का ध्यान रखेंगे और अधिकारियों को-भक्त-शक्त शिष्यों को ही मेरा दान करेंगे तो मैं अवश्य पराक्रम-शालिनी बनूंगी।

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्य्योपपन्नम्। यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्!

विद्या-जिसको आप जानें कि यह शुचि-शुद्ध है, मनसावाचा-कर्मणा एक रूप है, अप्रमत्त-प्रमाद-रहित है, मेधावी है, ब्रह्मचारी है और किसी दशा में भी आपके साथ द्रोह-बुद्धि रखने वाला नहीं है, उसीको आप मेरा दान कीजिए। ब्रह्मन्, वही शिष्य सच्चा निधिप है, मेरा रक्षा करने वाला है। ब्रह्मन्, इस बात का यथेष्ट ध्यान रखियेगा।

विद्या शिष्यों के प्रति बोली-

य आतृणत्य वितथेन कर्णौ अदुःखं कुर्व्वन्, अमृतं सम्प्रयच्छन्। तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कतमच्चनाह॥

विद्या-हे शिष्यो, जो मधुर उपदेशों से, विद्यादान द्वारा सत्य के प्रकाश से अज्ञान के बन्धनों को काटता है, ज्ञान-रूपी अमृत देता है, उसीको तुम अपना माता-पिता समझो। उसके साथ किसी दशा में भी द्रोह न करो। द्रोह करोगे तो मैं (विद्या) निष्फल हूंगी।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा। यथैव ते न गुरोर्भोजनीयाः तथैव तान् न भुनक्ति श्रुतं तत्॥

विद्या-जो बुद्धिमान शिष्य उपर्युक्त तत्त्व को न समझ कर मन-वचन-कर्म के द्वारा गुरुओं का आदर नहीं करते, वे जिस प्रकार गुरु द्वारा रक्षा नहीं किये जाते, उसी प्रकार उससे पढ़ा हुआ-सुना हुआ भी सफल नहीं होता-शिष्य का अध्ययन निरर्थक हो जाता है। शिष्यो, इस तत्त्व को हृदय में धार लो, जिसके साथ तुम द्रोह-बुद्धि रखोगे, उस गुरु का हृदय-कमल तुम्हारे पढ़ाने के लिए कैसे खिलेगा और तुम ही उससे क्या प्राप्त कर लोगे?

यह है विद्या, गुरु और शिष्य की बातचीत, जो अलङ्काररूप में निरुक्त तथा मन्वादि धर्मशास्त्रों में वर्णित है। कैसा सुन्दर उपदेश है! गुरु-शिष्य-भाव को स्थिर रखने का-विद्या को तेजस्वी बना कर सुरक्षित रखने का कैसा सुन्दर उपाय है! प्राचीन समय में प्रत्येक गुरु-गृह साक्षात् गुरुकुल था। आचार्य पिता और गायत्री माता थी। आचार्य पूर्व रूप, अन्तेवासी उत्तररूप और प्रवचन सन्धान थो। इन्हीं गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदाध्यापन होता था, इसीसे वर्णाश्रम-धर्म सुरक्षित थे।

प्राचीन तपोधन ऋषि-मुनि-ब्राह्मणों के तप से आर्य्य जाति जीवित है-यह क्या थोड़ी बात है? ईश्वर की इच्छा है कि अपने पापों के भुगतान के पश्चात् यह जाति फिर उठे और इसके द्वारा केवल भारत का ही भला न हो बल्कि अखिल संसार मात्र का भला हो—एवमस्तु।

स्वराज्य बनाम सुराज्य।

(माननीय शिक्षा-मंत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी)

हम आशा करते हैं कि भारत में वास्तविक सुराज होगा, भारतीय संस्कृति की जड़ उस विचार धारा से परिपुष्ट होती है जिसका उद्‌गम सिन्धु और सरस्वती के किनारे आज से सहस्रों वर्ष पहिले ऋषियों के तपोवनों में हुआ था। जब-जब भारत उस उपदेश माला की ओर से पराङ्मुख हुआ है तभी उसका पतन हुआ है। भारतीय संस्कृति का एकमात्र मूल-धर्म है। धर्म का अर्थ मजहब नहीं है, अनीश्वर वादी सांख्य, बौद्ध और जैन मतावलंबी भी ईश्वरवादी नैयायिक के समान ही धर्म के उपासक हैं।

आज डर लगता है कि हम धर्म्म को कहीं भुला न दें। स्वराज की सेना के अधिकतर सैनिक हिंदू थे। स्वभावतः आज उनमें विजयोल्लास है। यह बुरा नहीं है, परन्तु उल्लास की सार्थकता इसमें है कि हिंदू यह समझे कि स्वराज को सुराज बनाने का दायित्व उस पर है। वह इस गुरुभार को तभी उठा सकेगा जब अपने 'स्व' में अपनी धर्म्ममूलक संस्कृति में स्थिर होगा। यदि वह अपने को भूला तो देश को ले डूबेगा।

हमारे पड़ोस में पाकिस्तान बना है। हम नहीं जानते वहां अल्पसंख्यकों के साथ कैसा बर्ताव होगा। अब तक का अनुभव अच्छा नहीं है। इसीलिए कुछ लोग यह सीख दे रहे हैं कि युक्तप्रान्त जैसे प्रदेशों में जहां हिन्दुओं का बहुमत है मुसलमानों को दबाया जाय, पाकिस्तान के पापों का प्रतिशोध लिया जाय। लोगों की बुद्धि को विकृत करने में उनको थोड़ी सी सफलता भी हुई है।

यह भयानक अवस्था है, चिन्ता की बात है। जिस दिन हिंदू इस मार्ग पर चलेगा वह हिंदू न रह जायगा। मान लिया जाय कि पाकिस्तान में अन्याय और अत्याचार होता है पर उसका बदला यहां कैसे लिया जाय? सिंध में किसी हिंदू का घर जल गया तो क्या यहां किसी मुसलमान का घर जलाने से वह बन जायगा? यहां मुसलमान को मारने से वहां का मरा हिंदू कैसे जी जायगा? हिंदू को तो यह बताया गया है कि उसे 'मातृवत् पर दारेषु' व्यवहार करना चाहिये। परायी स्त्रियों को मां, बहिन, बेटी समझना चाहिये। प्रताप और शिवा ने विजय और पराजय में इस नीति को नहीं छोड़ा। अब क्या हिंदू बदले के भाव से मुसलमान स्त्रियों पर बलात्कार करेगा? किसी ने मन्दिर तोड़ा तो उसका दुःख हम सबको होगा परन्तु यहां की मस्जिद तोड़ने से पंजाब का भग्न शिवालय कैसे फिर खड़ा होगा? दूसरे लोगों को चाहे जो सिखाया गया हो परन्तु हम तो यह कहते आये हैं:-

रुचीणां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

(जिस प्रकार सभी नदियां सीधे टेढ़े मार्गों से घूम कर समुद्र में मिलती हैं, इसी प्रकार हे भगवान्! अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न २ उपासना करते हुए भी सब मनुष्य तुमको ही प्राप्त होते हैं।)

चोर के साथ चोर, मूर्ख के साथ मूर्ख, शराबी के साथ शराबी, बनने से तो काम नहीं चलेगा। हम अपने को गिरा देंगे पर उसको न उठा सकेंगे।

हिंदुओं की संख्या हमारे यहां बहुत बड़ी है। वह सौ में छियासी हैं। युक्त प्रान्त के अल्पसंख्यक उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। बल में, विद्या में, बुद्धि में, शौर्य्य में, तप में, यहां का हिन्दू किसी दूसरे से पीछे नहीं है। इसी से यह प्रदेश प्राचीनकाल से आज तक संस्कृति में अग्रणी रहा है और परार्थसाधन तथा लोकहित के लिए आत्मबलि का मार्ग दिखाता रहा है। आज विजय की बेला में उसे बहकना न चाहिये। वीर और बलवान को क्षमा ही शोभा देती है। जो संख्या [illegible]

आश्रित हैं, उनको अभयदान देना ही हमारी महत्ता के अनुरूप है। यदि हमको अपने ऊपर निष्ठा है, अपनी परम्परा पर श्रद्धा है, तो हमको यह विश्वास भी होना ही चाहिये कि इस प्रदेश की संस्कृति और सभ्यता पर हमारी अमिट छाप होगी।

मैं यह बातें हिंदू के नाते हिंदुओं से कहता हूं। इस भूभाग की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखना, यहाँ के स्वराज को सुराज बनाना, इस प्रदेश की सभी वर्गों, सम्प्रदायों, व्यक्तियों की सेवाओं से अधिकतम् लाभ उठाने का अवसर देना, हिंदुओं की सद्बुद्धि पर निर्भर है।

जहां तक दूसरे लोगों की बात है, मैं आशा करता हूं कि वह भी सद्बुद्धि से काम लेंगे। भारतीय ईसाई से अधिक नहीं कहना है क्योंकि उसने भारतीय संस्कृति को नहीं छोड़ा है। हमारे मुसलमान भाइयों को गंभीरता से विचार करना चाहिये, चीन का मुसलमान चीनी रहता है, ईरान का मुसलमान ईरानी रहता है, यूरोपियन मुसलमान यूरोपियन रहता है, सैकड़ों वर्षों से जावा निवासी मुसलमान हो गये हैं परन्तु उनमें आज भी सुकर्ण, सुधर्म्म, जैसे नाम मिलते हैं। इन देशों के मुसलमान अपना रहन-सहन नहीं बदलते, नाम नहीं बदलते, अपने पूर्वजों को नहीं भूलते। भारतीय मुसलमान का अब तक का ढंग दूसरा था। वह अपने हिंदू पड़ोसियों से इतना दूर जा पड़ा था कि अपने बाप-दादों को भी पराया मानता था। पारसी रुस्तम, नौशेरवां, कैखुसरो, जमशेद को अपना समझता था, अपने पूर्वज भीम, राम, कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठर, अशोक, चन्द्रगुप्त, से कोई संबंध न था। भारतीय व्यास, कणाद, गौतम की अपेक्षा यूनानी प्लेटो, अरस्तू, पाइथागोरस, को अपने अधिक समीप मानता था। यह बात अब बंद होनी चाहिये। मुसलमान चाहे जिसकी, जिस भाषा में, जैसे उपासना करे, चाहे जिन स्थानों को तीर्थ माने, चाहे जिन महात्माओंको पूज्य माने, पर अब उसे भारतीय बनकर रहना होगा, भारतीय पराम्परा उसकी परम्परा होगी, भारतीय रहन-सहन उसका रहन-सहन होगा, भारतीय संस्कृति उसकी संस्कृति होगी, तभी वह यहां समान नागरिकता का अधिकारी हो सकता है।

हमको बहुत सी पुरानी बातें भूलनी हैं। आज से पहिले किसने हमारा विरोध किया था, इसका रोना कब तक रोया जायगा। इन दरिद्र, दुर्बल, निरक्षर प्राणियों को फिर से मनुष्य बनाना साधारण काम नहीं है। इस बोझ को कोई एक दल नहीं उठा सकता। इस काम में हम सबकी आवश्यकता है, सब के लिए जगह है।

एक बात हमारे सामने होनी चाहिये। जैसा मैंने पहिले कहा है, भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र—धर्म्म है। पृथिवी पर जो संघर्ष मचा हुआ है उसका एक महाकारण यह है कि आज सब अपने अधिकारों पर ही दृष्टि रखते हैं। यह भूल जाता है कि अधिकार का दूसरा पहलू कर्त्तव्य है, जो एक का अधिकार है वह दूसरे का कर्त्तव्य है। यदि सब अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान दें तो सबके अधिकार आप ही प्राप्त हो जायं। अधिकार का भूखा कहता है, 'दूसरों से मुझे अमुक-अमुक बातें प्राप्त होनी चाहिये'। कर्त्तव्य का उपासक कहता है, 'दूसरों को मुझसे अमुक २ बातें प्राप्त होनी चाहिये'। पहिला भाव कटुता, दूसरा सौहार्द्र फैलाता है। यदि हम यह समझ लें कि सबका सब पर ऋण है, सबका सबके कल्याण से संबंध है, मुझे अपना ऋण चुकाना ही है, तो सभी अनायास श्रेय के भागी हों। इसी का नाम धर्म्म है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के लिए इससे अच्छा कोई मार्ग नहीं हो सकता।

भारत का नागरिक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या चाहे जो हो, उसको प्रत्येक काम धर्मबुद्धिसे करना चाहिये। तभी भारत फिर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त होगा और उसकी स्वाधीनता सार्थक होगी।

सहानुभूति।

मानसिक रोगकी अद्भुत् चिकित्सा

(एक मनोवैज्ञानिक)

जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपने आपको दूसरों के समक्ष खोलता है, दुराव नहीं रखता वह अपनी मानसिक जटिलताका अन्त करता है अर्थात् उसकी विचारधारा और कार्यक्रम स्पष्ट और स्वस्थ होता है। बुद्ध भगवान का कथन है कि-'ढके हुए को खोल दो, छिपे हुए को प्रसिद्ध कर दो, तो तुम अपने पापों से मुक्त हो जाओगे, क्योंकि छिपा ही पाप लगता है, उधरा हुआ पाप नहीं लगता। मनुष्य अपने कुचिन्तन से अनेक प्रकार की मानसिक व्याधियां उत्पन्न करता है। जो जितना ही अधिक अपने आपको दूसरों से अलग रखने की चेष्टा करता है, उसके विचार उतने ही दूषित हो जाते हैं। मनुष्य के मनमें अनेक प्रकार की भावनाएं उठती हैं। जब तक वह अपनी इन भावनाओं को अपने मित्रों के समक्ष प्रकाशित करता रहता है, तब तक वे मानसिक जटिलता और परेशानीका कारण नहीं बनती, किन्तु हम अपनी सभी भावनाओं को अपने मित्रोंके समक्ष प्रकाशित नहीं कर सकते। क्योंकि वे इतनी घृणित होती हैं कि हमारा विश्वास होता है कि उन्हें जान कर भी हमारे मित्र हमसे घृणा करने लग जायेंगे। इसी तरह हम अपने अनेक दुष्कर्मों को प्रकाशित होने से रोकते रहते हैं। यह मनोवृत्ति यहां तक बढ़ जाती है कि हम उन्हें अपने समक्ष भी स्वीकार नहीं करना चाहते। ऐसी ही अवस्था में मानसिक जटिलता और मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

मानसिक रोगकी अवस्था में मनुष्य के जटिल भाव अपने आपही प्रकाशित होने लगते हैं। चेतना इनका प्रकाशन नहीं रोक सकती। वह स्वयं निर्बल होकर टूक-टूक हो जाती है। आरोग्य लाभ के लिए जटिल भावों का इस प्रकार प्रकाशित होना आवश्यक भी है। वास्तव में हम जिसे रोग कहतेहैं,वह वास्तविक रोगका वाह्यरूप मात्र है। वास्तविक रोग आंतरिक होता है। वाह्य रोगके द्वारा-यह आन्तरिक रोग बाहर निकलता है। और इस तरह रोगी को आरोग्य लाभ कराने में लाभ पहुंचाता है। युंग महाशय का कथन है कि किसी भी प्रकार का मानसिक रोग सदा नहीं ठहर सकता। बाह्य रोग के द्वारा जब भीतरी मानसिक विकार निकल जाता है तो व्यक्ति आरोग्य का अनुभव करता है।

मानसिक विकार के बाहर निकलने में सहानुभूतिका भाव बहुत ही लाभकारी होता है। रोगी उससे सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति के समक्ष अपने मनके छिपे भाव प्रकाशित कर सकता है। जो व्यक्ति रोगी से घृणा करता है अथवा उससे तटस्थ रहता है उसके समक्ष रोगी अपने भाव कैसे प्रकाशित कर सकता है। पागल से घृणा करने वाले व्यक्ति को देखकर पागल का रोग और भी बढ़ जाता है। इसके प्रतिकूल सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति के समक्ष पागल का पागलपन कम हो जाता है।

इस प्रसंग में डाक्टर होमरलेनका प्रयोग उल्लेखनीय है। डाक्टर होमरलेन ऐसे अनेक व्यक्ति शेलशाम के रोगियों को आरोग्य कर सके, जो डाक्टर फ्रायडकी विधिसे चंगे न हो सके थे। इसका प्रधान कारण डाक्टर होमरलेनका रोगियों के प्रति सहानुभूतिका भाव था। जहां डाक्टर फ्रायड के मौलिक स्वभाव को स्वार्थी और पाशविक मानते थे, डाक्टर होमरलेन उसे दैविक मानते थे। इसलिए ही उन्हें रोगी के साथ सहानुभूति स्थापित करना आसान होता था। इस सहानुभूति के कारण रोगी खुलकर अपने मनकी गाँठ और परेशानियां डाक्टर होमरलेनके समक्ष खोल सकता था। रोगीके मनमें अन्तर्द्वन्द होने के कारण ही रोग की उपस्थिति होती है।

जब उस अन्तर्द्वन्दका अन्त हो जाता है तो रोग का भी अन्त हो जाता है। अन्तर्द्वन्द जबतक भीतर ही रहता है तब तक रोग के बाह्य लक्षण नहीं दिखायी देते, और जब वह बाहर आने लगता है तो मानसिक रोग की उपस्थिति होती है। अन्तर्द्वन्दका अन्त भीतरी और बाहरी मनमें समरसता स्थापित होने से होता है, पर इसके लिए आवश्यक है कि रोगी की गुप्त भावनाएं उसकी चेतना के समक्ष आवें। उन भावनाओंके प्रति न उसकी चेतना सहानुभूति रखती है, न दूसरे लोगों की। जब चिकित्सक रोगी की छिपी भावनाओंके प्रति सहानुभूति दर्शाता है तो वे धीरे-धीरे अपने आप बाहर आने लगती हैं। उनके बाहर आने पर उसके चेतन और अचेतन मनमें एकता स्थापित होना सरल हो जाता है। वास्तव में चिकित्सक के समक्ष अपने गुप्त भाव प्रकाशित करने और उसके द्वारा सहानुभूति से ही रोग का निवारण हो जाता है।

डाक्टर को रोगी का विश्वासपात्र बनने के लिए उससे केवल बड़े ही प्रेमका व्यवहार करना पड़ता है वरन् अपने आपको भी उसके समक्ष खोलना पड़ता है। उससे कई बार अपने अनुभव भी कहने पड़ते हैं जिससे कि रोगी को आत्मस्वीकृति करने में प्रोत्साहन मिले। यदि किसी व्यक्ति को कोई मानसिक रोग काम-सम्बन्धी दुराचार से उत्पन्न हुआ है तो स्वयं चिकित्सक को अपने दुराचार के एक दो उदाहरण देने पड़ते हैं, जिससे रोगी उसके साथ अपनी आत्मीयता स्थापित कर सके। रोगी का रोग मुक्त होने के लिए डाक्टर के समक्ष अपने छिपे मनोभावों को प्रकाशित करना आवश्यक नहीं, उसका अपने ही समक्ष अपने भावों का प्रकाशन करना आवश्यक है। रोग के विनाश के लिए आत्म स्वीकृति और आत्मीयता स्थापित होना आवश्यक है। जब मनुष्य अपने भाग्य को ही घृणा की दृष्टि से देखता है, तो वह रोगी बनता है, क्योंकि वह अपने घृणित भावों को दबाता है और उनको स्वीकार नहीं करता, वह अपने दुष्कर्म भूलने की चेष्टा करता है। इस तरह उसके रूप की जटिलता बढ़ती है। जब मनुष्य अपने वाञ्छनीय समझे जाने वाले भावों का दमन न करके उन्हें स्वीकार करता है और उनको भी स्वभाविक मान लेता है तो उसकी विक्षिप्तता नष्ट हो जाती है। जो डाक्टर सभी प्रकार के भावों को स्वाभाविक समझता है वही रोगी के प्रति सहानुभति का भाव प्रदर्शित कर सकता है। ऐसा ही व्यक्ति रोगी को आरोग्य लाभ कराने में सहायक हो सकता है।

यहां डाक्टर होमरलेन के कुछ प्रयोग उल्लेखनीय हैं। एक बार डाक्टर होमरलेन के समक्ष एक ऐसी महिला आयी जिसे पेट में घोर पीड़ा थी। यह महिला अपना निवास स्थान नहीं बतलाना चाहती थी। उसका पति स्वयं पेट के रोग का विशेषज्ञ था और उसने अपनी स्त्री की पूरी चिकित्सा की, पर उससे उसका रोग न हटा। इस महिला को यह सूझ आयी कि सम्भवतः मेरे रोग का कोई मानसिक कारण है, अतएव वह डाक्टर होमरलेन के पास गयी और उसने अपना नाम बदल कर बतलाया और अपने आपको अविवाहित कहा। डाक्टर होमरलेनने कुछ दिनों तक इसकी चिकित्सा की, पर कुछ लाभ न हुआ। डाक्टर होमरलेनके समक्ष यह महिला अपनी सभी बातें प्रकट नहीं करना चाहती थी, अतएव उन्हें रोग का कारण ढूंढ़ना कठिन हो गया। डाक्टर होमरलेन ने सोचा कि सम्भवतः कोई गुप्त प्रेम उसके रोग का कारण है। इस गुप्तप्रेमको स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से उन्होंने समाज में प्रचलित रूढ़ियों के दोष दरशाने प्रारम्भ किये। इस प्रकार वे उसके नैतिक प्रतिबन्ध शिथिल करने की चेष्टा करने लगे। डाक्टर होमरलेन की इस प्रकार की बातचीत सुनकर वह महिला एकाएक उठकर यहां से चली गयी। पीछे उसने फोन-द्वारा सूचित किया कि वह कोई व्यभिचारिणी स्त्री नहीं, वरन

विवाहित स्त्री है और अपना निवास स्थान ठीक-ठीक न बताने का कारण भी उसने डाक्टर को बता दिया।

अब रोग का पता लगाना सरल हो गया। इस महिला को पेट का रोग एक रोगी की अवस्था देखकर भय से उत्पन्न हो गया था। महिला का विश्वास था कि उसका पति रोग का विशेषज्ञ है, अतएव उसे यह रोग हो ही नहीं सकता। किन्तु उसने एक स्त्री को इसी रोग से अपने ही घर मरते देखा और उसका पति उसे न बचा सका। यह स्थिति देखकर उसके मनमें असाधारण भय उत्पन्न हो गया। यही उसके पेट के रोग का कारण था। वास्तव में यह पेट का रोग शारीरिक रोग तथा मानसिक रोग मात्र था।

जो व्यक्ति मानसिक रोग की किसी प्रकार की चिकित्सा नहीं जानता, वह भी अपने प्रेम-व्यवहार से रोगी को स्वास्थ्य लाभ करने में सहायक हो सकता है। मानसिक रोगी की इच्छा होती है कि कोई उसकी व्यथा सुने, पर इसे सुनने के लिए कोई तैयार नहीं होता। अतएव उसका आन्तरिक कष्ट बढ़ता ही जाता है। यहां हमें ध्यान रखना आवश्यक है कि रोगी अपनी व्यथा के रूप में जो बातें कहता है वे वास्तविक नहीं हैं। वे वास्तविक स्थिति की संकेत मात्र हैं। अतएव कोई मनोवैज्ञानिक ही पागल व्यक्तियों की गप्प सुनने में रुचि ले सकता है। साधारण मनुष्य उसके विचारों को जैसा का तैसा मानकर उसके साथ किसी प्रकार भी न तो सहानुभूति प्रदर्शित कर सकते हैं, और न उसकी कल्याण रुचि दर्शा सकते हैं। सम्भव है कि जो दयनीय अवस्था आज एक पागल की है, वैसी अवस्था हमारी भी हो जाय। जब हम अपने मनके विषय में कुछ भी नहीं जानते तो ऐसा होना असम्भव नहीं। पागलों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार रखने से उनमें कैसा मौलिक परिवर्तन हो जाता है, उसका निम्नलिखित एक उदाहरण है।

एक बार मेरा एक मित्र किसी राजनीतिक अपराध में एक ऐसे जेल में कुछ दिन तक रखा गया, जहां पागल आदमी पहले पहल लाकर रखे जाते थे। वह उन पागलों से स्वच्छन्दता से मिल सकता था, उसने देखा कि बहुत से पागलों में मौलिक सुधार उसके व्यवहार से हो जाता था। एक के पागलपन में तो इतना सुधार हो गया कि जेल के डाक्टर ने यह प्रमाणित कर दिया कि वह पागल नहीं है। पर इसके कुछ ही समय बाद वह जेल के वार्डर के कठोर व्यवहार के कारण फिर जैसा का तैसा हो गया।

साधारण पागलखानों में भेजने से पागलों में कोई सुधार नहीं होता, अपितु उसकी हालत और खराब हो जाती है। इसका कारण वहां का असहानुभूति पूर्ण वातावरण है। पागलों में किसी प्रकार का सुधार करने के लिए जितने परिश्रम की आवश्यकता होती है उतना परिश्रम पागलखाने के अधिकारी नहीं कर सकते। साधारण व्यक्तियों के पागलपन के निवारण में तो सहानुभूति बड़ी ही लाभप्रद होती है। कहा जाता है कि जब हम अपना दुख अपने मित्रके समक्ष प्रकाशित कर देते हैं तो हमारा हृदय हलका हो जाता है। उसी प्रकार यदि हम अपने मनके गुप्त मनोभाव भी अपने मित्रके समक्ष प्रकट कर दें तो अपने मानसिक विकारों से मुक्त हो जांय। मानसिक व्यथा से पीड़ित व्यक्ति से सहानुभूति प्रदर्शित करने से उसकी व्यथा कम हो जाता है। जब तक कोई व्यक्ति अपने आपको किसी दूसरे के समक्ष खोलता नहीं तबतक उसकी व्यथा कम नहीं होती। पर संसार में विरला ही व्यक्ति दूसरों के दुखों का रोना सुनना चाहता है। उसके पास न इसके लिए समय और न रुचि है। अतएव कोई विरला ही मनुष्य दूसरे की मानसिक व्यथा कम करने में सहायक होता है।

—"संसार" से

कुण्डलिनी-शक्ति।

(श्री गुलाबचन्द्र जैन)

साधारणतया प्रत्येक प्राणीमें कुंडलिनी सुषुप्तावस्थामें रहती है। यह सर्पाकारहै तथा इसकी गति भी सर्प की ही तरह है। योगाभ्यासी के शरीर में वह चक्रवत् गोल चलती तथा शक्तिवर्धन करती है। श्रीमती ब्लेवेट्स्की का कहना है कि इसकी चाल प्रकाश की अपेक्षा कहीं अधिक तेज है। प्रकाश १८,५०० मील प्रति सेकेंड चलता है किन्तु कुण्डलिनी की गति ३४,५०० मील प्रति सेकेण्ड है। कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में स्थिर होकर सोई रहती है। मूलाधार शरीर के ६ चक्राकार गतिमान् शक्ति केन्द्रों में से एक है। वर्तमान शरीर-विज्ञान की दृष्टि से ये स्थान (*Nerves*) नाड़ियों के समूह हैं। इनके नाम क्रमशः मूलाधार (*Pelvic Plexus*) स्वाधिष्ठान (*Hypogastric Plexus*) मणिपूरक (*Epigastric Plexus*) अनाहत (*Cardiac Plexus*) विशुद्ध (*Carotid plexus*) तथा आज्ञा चक्र (*Medulla Oblangata*) हैं।

मूलाधार सुषुम्ना-दंड के निम्नभागों में स्थिर है। कुण्डलिनी इसी स्थान पर सोई रहती है। स्वाधिष्ठानचक्र प्लीहा के पास स्थित है। इसके पास ही मणिपूरक चक्र है जिसका स्थान नाभि है। मणिपूरक के ऊपर हृदयस्थ अनाहत चक्र है। विशुद्ध चक्र अनाहत चक्र के ऊपर पाया जाता है। इसका स्थान कण्ठ है। चुल्लिका ग्रंथियां (*Thyroid glands*) इसी से संबंधित हैं विशुद्ध चक्र के ऊपर आज्ञा चक्र है। यह दोनों भौहों के बीच में कपाल में स्थित है। पीनल ग्लैंड (*pineal glands*) तथा पिट्यूटरी बाडी (*pituatory body*) इससे संबंधित हैं।

कुण्डलिनी जाग्रत् होकर मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्ना मार्ग से होकर इडा (सूर्यनाड़ी) पिंगला ([illegible]) [illegible] ओर प्रवाहित होकर इन षट्चक्रों को प्रज्वलित एवं प्राणयुक्त करती हुई अन्त में सहस्रार में जाकर योगी को पूर्णावस्था की प्राप्ति करा देती है।

मेरुवंश में से होकर ऊपर जाते समय जिस २ चक्र में से होकर यह गुजरती है उस उस चक्र को यह जागरित करती तथा खोलती जाती है। स्वाधिष्ठान चक्र के जागरित होने पर मनुष्य सूक्ष्मतर लोक में स्वच्छंद विहार करता है। मणिपूरक की जागृति के साथ साथ आत्मरक्षा की शक्ति उसमें अधिक हो जाती है। अनाहत चक्र के खुलते ही उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। विशुद्ध चक्र का जाग्रत होना दिव्य श्रुति (*Clariaudience*) का कारण है। आज्ञा चक्र के जाग्रत होते ही साधक को 'दिव्यदृष्टि' (*Clarivision*) प्राप्त हो जाती है। आज्ञाचक्र के ऊपर ब्रह्मरंध्र में सहस्रार चक्र है। सहस्रारचक्र का जाग्रत होना ही कुण्डलिनी साधक का चरम ध्येय है।

सहस्रार के जाग्रत होते ही शरीर और आत्मा अपनी स्वतंत्र स्थिति को प्राप्त होते हैं। आत्मा शरीर से बाहर निकल कर मन चाहे स्थान पर जाकर एवं लौट कर पुनः उसी देह में प्रवेश कर सकती है। योग क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत कर षट् चक्र रूप द्वारों को खोलते हुए मस्तिष्क में स्थित सहस्रार चक्र में उसे ले जाना ही योग की सिद्धि व सफलता है।

कुण्डलिनी के जाग्रत होने के साथ वेग उत्पन्न होने वाला प्रथम शब्द है 'नाद'। नाद के ३ भेद हैं—महानाद, नादान्त और निरोधिनी। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्तरूप महा बिन्दु है।

सम्पूर्ण चक्र कमल के आकार के माने गये हैं किन्तु इनकी पंखड़ियों की संख्या में अंतर है। मूलाधार चक्र में चार दल, स्वाधिष्ठान में ६, मणिपूरक में १०, अनाहत में १२, विशुद्धिचक्र में

ये चक्र पंचतत्वात्मक हैं । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत तथा विशुद्ध चक्र क्रमशः पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा आकाश के निदर्शक हैं । सहस्रार को शून्य चक्र भी कहते हैं।

अब हम उपरोक्त चक्रों का ध्यान करने के फल पर विचार करेंगे। आधार चक्र का ध्यान करने से मनुष्य वक्ता, मनुष्यों में श्रेष्ठ, सर्व विद्याओं का जानने वाला आनन्दित, आरोग्य तथा काव्य-प्रबंध में चतुर होता है । स्वाधिष्ठान चक्र का ध्यान करने से अहंकारादि विकार नष्ट होते हैं। वह श्रेष्ठ योगी, निर्मोही तथा गद्य-पद्य का कुशल रचयिता होता है। मणिपूरक चक्र का ध्यान करने वाला जगत का संहार व पालन करने में समर्थ होता है । जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है और वाक्य-रचना में वह चतुर हो जाता है। अनाहत चक्र का ध्यान का फल ईशत्वसिद्धि, योगीश्वरत्व, इन्द्रियजितता तथा परकायाप्रवेश शक्ति आदि हैं । विशुद्धाख्य चक्र के ध्यान में लीन योगी ज्ञानवान, उत्तम वक्ता, शान्तचित्त, त्रिलोकदर्शी सर्व हितकारी, आरोग्य-चिरंजीवी तथा तेजस्वी होता है । आज्ञाचक्र के ध्यान से वाक्य सिद्धि प्राप्त होती। सहस्रार का ध्यान करते ही योगी अमर-मुक्त, उत्पत्ति-पालन में समर्थ, आकाशगामी तथा समाधि युक्त होता है ।

कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर देहस्थ कफ पित्तादि दोष एवं त्याज्य पदार्थों को नष्ट कर डालती है। उसके ऊर्ध्व गमन करते ही देह के तमाम व्यापार बंद हो जाते हैं। हृदय तथा नाड़ी की गति भी बंद हो जाती है। कुण्डलिनी के सहस्रार में प्रवेश करते ही योगी मोक्ष प्राप्त करता है। चक्रों का प्रकाश कुण्डलिनी जागृति का द्योतक है ।

एक क्षुद्र झूंठ को छिपाने के लिये बहुत झूंठ का आश्रय लेना पड़ता है।

* * *

हम १२५ वर्ष जी सकते हैं।

श्री रिचर्ड ग्रेग अमेरिका से महात्मागान्धी को लिखते हैं—"न्यूयार्क के एक पत्र ने खबर दी है कि "आपने १२५ वर्ष जीवित रहने की आशा छोड़ दी है । यदि यह खबर बिल्कुल ठीक है, तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपनी बात को बदल दें।"

उत्तर में महात्माजी ने लिखा, "जो खबर ग्रेग साहब ने पढ़ी वह बहुत हद तक ठीक है। जब मैंने जाना कि मुझमें काफी अनासक्ति नहीं है, तो मैंने १२५ वर्ष जीने की आशा खो दी। अपने क्रोध की भावनाओं पर मैं इतना काबू नहीं पा सकता हूं कि मैं १२५ वर्ष जीने की आशा कर सकूं। एक दिन इस दुःखद बात का मुझे अनुभव हुआ कि मुझमें जरूरी अनासक्ति नहीं है। जिस आदमी का जीवन सेवामय नहीं है, उसे जीने का कोई हक नहीं है। गीता में लिखा है कि जिसमें अनासक्ति नहीं है, वह पूरी२ सेवा नहीं कर सकता ।

अपनी कमियों का सच्चा इकरार करने से आत्मा का भला होता है । इससे मनुष्य को अपनी कमियां दूर करने की शक्ति मिलती है। "हरिजन" के पाठकों को जानना चाहिए कि मैं अपनी कमियों को दूर करने की हर कोशिश कर रहा हूं, ताकि अपनी खोई आशा को फिर पा लूं। इस सम्बन्ध में मुझे यह दोहरा देना चाहिए कि जो कोई अपना जीवन मनुष्यों की सेवा में अर्पण कर देता है, उसे यह आशा रखने का हक जरूर है। उसे एक शेखचिल्ली का सपना हरगिज न समझना चाहिए । मुझे और मेरे जैसे दूसरे कोशिश करने वालों को इसमें सफलता न मिले, तो इससे स्पष्ट नहीं होता कि १२५ वर्ष जिन्दा रहना असभव है।

विचार-पूजा।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

पिछले दिनों हम एक सार्वजनिक पाठशाला में गये। वहाँ हमने कक्षाओं की दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखे हुए देखे। कई विद्यार्थियों से उनके विषय में बातचीत की, तो ज्ञात हुआ कि उन वाक्यों का, उन आदर्शों का एक हल्का एवं ऊपरी प्रभाव तो बालकों पर जरूर पड़ा है, किन्तु वह उनके अन्तर्जगत् तथा मानसिक संस्थान का अंग न बन सका। इसी प्रकार हम अनेक आदर्शवादी अर्द्धरत साधकों के जीवन में देखते हैं कि वे उत्तमोत्तम धर्म ग्रन्थ अपने पास रखते हैं, ऊँची किस्म की नारे बाजी लगाते हैं, किन्तु उनके चरित्र में उन धर्म ग्रन्थों का केवल एक हल्का तथा ऊपरी प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के ऊपरी एवं जीवन से रहित "विचार-पूजा" उनमें आती है।

विचार-पूजा अन्य आदतों के समान ही एक आदत मात्र है। इसे हम बुरी आदतों में तो नहीं मान सकते किन्तु ऐसा व्यक्ति अपने जीवन में कुछ अधिक उन्नति नहीं कर पाता। उसकी प्रवृत्ति तो उत्तम और दिव्य कार्यों की ओर है, वह चाहता है कि उन उपदेशों को जीवन में उतारे किन्तु अन्य चीजों के संग्रह की भाँति वह कुछ अच्छे ग्रन्थ, आदर्श वाक्य ही संग्रह कर पाता है। स्थायी रूप से उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता। वह यह नहीं समझ पाता कि संग्रह करने की वृत्ति पाना एक बात है, उन उच्चादर्शों को जीवन में उतार कर स्थायी लाभ करना दूसरी बात।

विचार-पूजा वाले व्यक्ति के मानसिक संस्थान का निरीक्षण कीजिए उसमें सद्प्रवृत्ति है किन्तु उन उद्देश्यों में प्रेरणा नहीं है। निष्ठा एवं आत्म विश्वास की भारी न्यूनता है। वह प्रशस्त पथ का अनुगामी तो बनना चाहता है किन्तु जीवन में उस आदर्श को पालने की साधना नहीं करना चाहता। वह केवल उन विचारों, आदर्शों को तोते की भाँति रट लेना चाहता है, आत्मविश्वास को उनसे सम्बन्धित नहीं करना चाहता। उसमें आत्म बल नहीं। यदि है, तो बहुत कम। जिसका निश्चय दृढ़ हो, वही आत्म-बली है। उसका निश्चय संसार को डिगा सकता है। विचार-पूजक का निश्चय क्षीण होता है। उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि जिन्दगी में आदर्श पालन के लिए साधना कर सके।

बुद्धिमान् व्यक्ति अपने जीवन को थोड़े से सरल नियमानुसार बनाता है। वह बहुत समझ बूझ के पश्चात् आदर्शों का निर्णय करता है। एक बार निर्णय करने के पश्चात् वह साधनों से डिगता नहीं, वादविवाद नहीं करता प्रत्युत साधना में प्रवृत्त होता है। ऐसे व्यक्ति के विचार, संकल्प, एवं कार्य सात्विक होते हैं। उसे किसी बात में विरोध नहीं जान पड़ता। समृद्धि एवं ज्ञान का अक्षय भंडार वह अपनी शक्तियों में पा लेता है।

हम प्रायः देखते हैं कि अध्यापक, उपदेशक, लेखक, नेता, कार्यकर्त्ता, सार्वजनिक शिक्षा संस्थाओं के सर्वेसर्वा संस्थाओं के मूल में निहित विचारों का प्रचार न कर, मिथ्या भावनाओं के जाल में लोगों को फंसाते हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि जीवन में उतरे हुए आदर्श वाक्य ही प्रेरणा का काम दे सकेंगे अन्यथा वह मिथ्या प्रदर्शन मात्र होकर हास्यास्पद होगा।

मौखिक एवं लिखित शिक्षा की अपेक्षा व्यवहारिक और सदाचरण रूपी शिक्षा का प्रभाव अधिक पड़ता है। + +

यदि तुम अपने साथ किये गए अहसान को न मानकर कृतज्ञता प्रगट न करोगे तो फिर तुम्हें उससे अधिक आशा न रखनी चाहिये क्यों कि घूरे पर गुलाल को व्यर्थ ही में कोई बखेरना नहीं चाहता। + +

अधिकार और कर्तव्य।

(श्री० दौलतराम कटरहा बी. ए.)

राजकुमार सिद्धार्थ प्रातःकाल उपवन में भ्रमण कर रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने एक हंस को जमीन पर छटपटा कर गिरते हुए देखा। आतुर होकर उन्होंने उसे उठाकर गले से लगा लिया। उस बेचारे का शरीर बाण लगने से रक्ताक्त हो रहा था। थोड़ी देर बाद उनके भाई देवदत्त के सेवक ने आकर उनसे कहा कि यह हंस कुमार देवदत्त ने गिराया है और वे उसे मांग रहे हैं। बुद्धदेव ने दयार्द्र भाव से हंस की ओर देखते हुए जो उत्तर दिया वह आचार्य शुक्ल की भाषा में इस प्रकार है।

मरत जो खग-अवसि पावत ताहि मारनहार।
जियत है तब तासु तापै नाहिं कछु अधिकार ?
दियो मेरे बंधुने बस तासु गति को मार।
रही जो इन मृदुल पच्छन की उठावनिहार॥

सिद्धार्थ ने कहा कि कुछ भी क्यों न हो इस हंस को मैं कुमार देवदत्त को नहीं दे सकता। बात न्यायालय तक गई और कुमार सिद्धार्थ विजयी हुए। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।

संसार में प्रत्येक जीव को जीने का अधिकार है। उसके इस अधिकार की जो रक्षा करता है वही उस स्वामित्वका वास्तविक अधिकारी है।

एक बार डाकुओं से लड़कर दो वीरों ने एक स्त्री को बन्धन-मुक्त किया। उनमें से एक उस स्त्री को अपनी पत्नी बनाना चाहता था और दूसरा उसके प्रति मातृ-भाव रखते हुए जब तक उसकी इच्छा हो तब तक के लिए आश्रय देना चाहता था। बात दूसरे लोगों तक गई और तय हुआ कि पत्नी भाव की अपेक्षा मातृ-भाव रखने वाला ही श्रेष्ठ रक्षक है और वही उसका अधिकारी है। भोग्य-भावना की अपेक्षा पूज्य-भावना [illegible]

सम्पत्ति की ओर भी अनेकों व्यक्तियों का पत्नी जैसा ही रुख होता है अतएव वह उनके पास नहीं ठहरती। भोग्य-भावना के कारण वे पैसे की कद्र नहीं करते। वेतन मिला नहीं कि उसे यहां वहां उड़ाना शुरू कर दिया और परिणाम यह होता है कि उन्हें हमेशा पैसे की तकलीफ ही बनी रहती है। किन्तु जो व्यक्ति लक्ष्मी की माता के समान हिफाजत करते हैं लक्ष्मी उनके घर से नहीं रूठती।

भारतवर्ष में अनेकों धर्मों के लोग रहते हैं। भारतवर्ष में रहने का अधिकार समान रूप से सबको हो सकता है किंतु सच्चा अधिकार उसीको है जो भारत को माता मानता है एवं भारतवर्ष को अपनी मातृ-भूमि मानता है।

भूमि उसकी होती है जो मातृभाव से उसकी रक्षा करते हुए माता को रक्त दान दे सकता है। जो भी भारत-भू को अपनी मातृ-भूमि, पितृ-भूमि और पुण्य-भूमि समझेगा वही उसका वास्तविक अधिकारी होगा। उसे अपना क्रीड़ा स्थल समझने वाले का अधिकार तो पाशविक शक्ति पर ही निर्भर है उच्चमनोभावनाओं पर नहीं, अतः वह उसका सच्चा अधिकारी नहीं। अधिकारों के लिये लड़ना वृथा है। महात्मा ईसाने अपने शिष्यों से कहा कि तुममें से जो सबसे बड़ा बनना चाहे वह सबका सेवक बने। अधिकारों को प्राप्त करने का उपाय यही है कि पहिले सेवा करो। जिस वस्तु के बदले में कर्त्तव्य न करना पड़े उसकी प्राप्ति के लिए तो सभी मुंह फाड़ सकते हैं।

संसार में अभी तक बहुत से अधिकार जन्म-सिद्ध और समय-सिद्ध होते आ रहे हैं जन्म ही अभी तक अधिकारों का निर्णय करता रहा है किंतु सरहेनरीमैन जैसे उद्भट कानून शास्त्री ने वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध ही कर दिया है कि मानव समाज-को अधिकारों का मनुष्य मनुष्य के संबंधों का आधार क्रमशः पद (*Status*)से समझौता (*contract*) ही बनता जारहा है। मालिक [illegible] से अधिकारों और कर्त्तव्यों का निर्णय

अभी तक उनके पद से होता रहा है किंतु आज की बदली हुई परिस्थिति में उस निर्णय का आधार पारस्परिक समझौता ही है जिसमें मालिकों को, वह मालिक है इसलिए अधिकार नहीं मिलते बल्कि इसलिए मिलते हैं कि अधिकारों के बदले में वह उचित-मात्रा में सेवा भी करता है। आज के युग में तो देने पर ही कुछ मिल सकता है।

हमें जान लेना चाहिए कि संसार में एक वर्गहीन समाज का निर्माण होने जा रहा है। जिसमें पंडित योद्धा व्यपारी और परिचारक आदि आवश्यक वर्ग तो होंगे किंतु परम्परागत नहीं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के ऊपर अपना वर्ग स्वयं ही निर्धारित करने की अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता रहेगी जिसमें अधिकारों की दृष्टि से स्त्री और पुरुष में कोई भेद न रहेगा और जन्म के बल पर कोई व्यक्ति अन्य से अधिक अधिकारों का उपभोग न कर सकेगा। सौभाग्य से हमारे देश की विधान सभा के अन्तर्गत बुनयादी अधिकार-समिति ने इन अधिकारों को स्वीकार कर लिया है। हमें अपने आपको इस अपरिहार्य स्थिति के अनुकूल स्वेच्छा पूर्वक ही ढाल लेने की दूरदर्शिता दिखानी चाहिए क्योंकि रो पीटकर और लड़ झगड़कर अन्त में विवशता के कारण किसी अपरिहार्य स्थिति को अपनाने की अपेक्षा पहिले से ही स्वेच्छा तथा प्रसन्नता पूर्वक उसे अपना लेने में अधिक सौंदर्य है।

हिंदुओं के सम्मिलित परिवारों में आज भी पद द्वारा ही अधिकार प्राप्त होते हैं। सास बहू से सेवा कराने की अधिकारिणी है। वह चूंकि सास है इसी आधार पर वह बहू पर अपना अधिकार कायम रखना चाहती है और वह इस प्राचीन तम पद-पद्धति पर अधिकार प्राप्त करने की प्रथा को बनाए रखने के लिए अन्तिम लड़ाई लड़ रही है। किंतु यदि वह तनक उदारता और विवेक से काम ले तो सारा झगड़ा ही मिट जावे। सास यदि बहू की प्रेम पूर्वक रक्षा करे तो निस्संदेह उसे उस पर शासन करने का अदत्त अधिकार प्राप्त हो सकता है। रामचरित मानस उठाकर देखिये भगवती कौशल्या महारानी सीता पर कितना स्नेह रखती हैं। राम से वे कहती हैं कि सीता तुम्हारे साथ वन जाना चाहती है पर वह इतनी सुकुमार है तथा मैं उसे इतना प्यार करती हूं कि उससे दीपक की बत्ती भी डालने के लिये नहीं कहती। सीता सुकोमल शय्या से उठकर गोद और हिंडोला में ही स्थान पाती रही है उसने कठोर भूमि पर पैर नहीं दिया। यदि हमारी माताएं अपनी बहुओं से इस तरह प्रेम करने लगें तो वे अपने दीर्घ कालीन अनुभव के बल पर अवश्य ही उसकी उचित सहायता और रक्षा कर सकेंगी और उन्हें उनके पद के अनुरूप ही उचित अधिकार अपनी उन सेवाओं के बदले में प्राप्त होगा।

चीन में आज भी सास को बहू पर बहुत से अधिकार प्राप्त हैं। वह चाहे तो बहू को आंगन में घंटों घुटनों के बल खड़ा रखे और चाहे तो उसकी जीभ में सुई तक चुभो दे। वहां पर पुत्र की स्थिति भी हिंदू-पुत्र की स्थिति से अच्छी नहीं है। कनफ्यूशियसिज़्म के आधार पर बना हुआ वहाँ का समाज-संगठन समाज-परक है व्यक्ति-परक नहीं अतएव उसके खिलाफ आज सारा चीन बगावत करने जा रहा है। प्राचीन रोम में भी पिता को पुत्र के जीवन और संपत्ति पर पूर्ण अधिकार होता था। यह सब इसलिए था कि उस समय समाज में पद को विशेष मान्यता प्राप्त थी।

राजा और प्रजा तथा पिता और पुत्र के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्णय पहिले पद के ही आधार पर होता था। किंतु आज पिता को पुत्र पर शासन करने का अधिकार तथाकथित समझौते पर ही निर्भर है, क्योंकि पिता पुत्र का पालन पोषण तथा रक्षा कर और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर समझौते की शर्तों को पूरा करता है। कर्त्तव्य के बल पर ही पिता को [illegible]

पर अधिकार प्राप्त हैं। आज की परिस्थिति में तो दंड देने का भी अधिकार उसीको है जो प्रेम और सेवा करता होवे। राजा के दैवी अधिकारों का आज कोई मूल्य नहीं है। राजा यदि शासन करने का अधिकार प्राप्त करना चाहता है तो उसे राम के प्रजा-पालन का आदर्श ग्रहण करना पड़ेगा एवं प्रजा की रक्षा और उसके सुखों की वृद्धि करनी पड़ेगी। राज्य-कर्मचारी भी इसी सिद्धान्त के आधार पर पहिले हमारे सेवक हैं बाद में शासक। यदि वे केवल हमें दण्ड देना ही जानें, हमारा दमन ही करें, तो यह निश्चय ही अन्याय है।

आधुनिक युगमें स्त्री पुरुष से समानाधिकार की माँग करती है। किन्तु समानाधिकार का अर्थ हर बात में पुरुष की बराबरी प्राप्त करना नहीं हो सकता। सामानाधिकार का अर्थ होता है अपने कर्तव्य और सेवाओं के अनुरूप ही अधिकारों की प्राप्ति। इस दृष्टिकोण से भी देखते हुए हम समझते हैं कि स्त्री को आज पर्याप्त अधिकार प्राप्त नहीं हैं। हमें चाहिये कि हम पद द्वारा अधिकार प्राप्त करने की बर्बर-युग की प्रवृत्ति को भूलकर अपनी सेवा-सहायता के बल पर ही स्त्री से अधिकार लें। मनुके अनुसार पति को पत्नी पर वही अधिकार है जो कि पिता को पुत्री पर। अधिकारों के लिए पत्नी पुत्रीवत् है किंतु आज के जमाने में पुरुष जाति इस अधिकार की रक्षा तभी कर सकती है जब कि वह भी पत्नी के लिए पिता-तुल्य होवे। भगवान राम को ही लीजिए। लक्ष्मण पर तो वे पुत्रवत् स्नेह रखते ही थे किंतु उसी भाव से वे भगवती सीता की रक्षा करते थे। भगवान राम लक्ष्मण और सीता दोनों की उसी प्रकार रक्षा करते थे जिस प्रकार कि पलक नेत्र के गोलकों की रक्षा करते हैं। वात्सल्य-भाव केवल सन्तान के प्रति ही हो सकता है अतएव राम का सीता के प्रति वात्सल्य-भाव अवश्य ही अद्भुत आदर्श एवं अनुकरणीय है।

———

तरकारियां हमारी मित्र हैं।

(डाक्टर युगलकिशोर चौधरी अग्रवाल)

दुर्भाग्य से हमारे देश के लोग अभी इस बात को भली भांति अनुभव नहीं कर रहे हैं कि आरोग्य प्राप्ति व दीर्घजीवन के लिए तरकारियों की कितनी अधिक आवश्यकता है और यह कि वे कैसी महत्त्वपूर्ण उपयोगी खूराक हैं—इसी लिए उनका उपयोग भी अधिक न होकर उन्हें एक साधारण खूराक समझा जाता है। अफसोस तो इस बात का है कि लोग उन्हें बहुत अधिक उबाल पका कर पानी फेंक देते हैं, और फिर अनेक प्रकार के हानिकारक मसाले मिलाकर खाते हैं।

कच्ची हरी तरकारियों के पत्ते और डंठलों में अत्यन्त रोग नाशक तथा पोषक तत्त्व होते हैं और इस लिए उन्हें बतौर शाक के न खाया जाकर भोजन का एक प्रमुख भाग समझ कर खाना चाहिए। उनका सलाद बनाकर, रस निकालकर अथवा सुखा कर भी अच्छा उपयोग हो सकता है।

जिन लोगों के दांत हैं, वे तो अच्छी तरह गाजर, मूली शलजम, सलाद, पत्ता गोभी, गांठ गोभी, पालक अथवा बथुवा घीया, टिंडे परवल आदि तरकारियों को कच्ची खा सकते हैं और उनसे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं किन्तु कारोबारी लोग, या वे जिनके दांत कमजोर हैं, तरकारियों का रस चूस चूस कर कच्चा पीकर पूरा फायदा उठा सकते हैं। ठोस तरकारियां तो भली भांति नहीं चबाई जा सकतीं किन्तु हरी सब्जयों का चबाया हुआ रस अत्यन्त हितकारी गुणदायक रोग नाशक तथा शक्ति व बल बर्द्धक सिद्ध होगा

रक्त को शुद्ध लाल व विकार रहित रखने के लिए लोहे (*Iron*) की बड़ी भारी आवश्यकता होती है इसलिए हमें काफी मात्रा में लोहयुक्त तरकारियां खानी चाहिए।

———

प्राचीन गौरव प्राप्त करने के लिये

आओ, अपनी कमज़ोरियों पर कुल्हाड़ा चलावें।

हिन्दू जाति इतिहास में अपनी एक विशेषता रखती है। पुरातत्व विज्ञान की जो शोधें हुई हैं उनसे सिद्ध है कि मानव विकास के आरंभ काल में भारतवर्ष के निवासियों ने ही प्रगति के पथ पर तेजी से कदम उठाये थे। संसार की सब से प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद है। जब तक दुनियां के अन्य भागों में लिखना पढ़ना तो दूर बोलने योग्य भाषा का भी प्रचलन न हुआ था, तब भारत में ऋग्वेद जैसा, ज्ञान भण्डागार अवतीर्ण हो चुका था। अध्यात्म, धर्म, स्वास्थ्य, शिल्प, कला, संगीत, भाषा, काव्य, रसायन, कृषि, व्यापार पशुपालन, अस्त्र, शस्त्र, युद्ध, शासन, भूगोल, खगोल, आदि का ज्ञान इसी जाति ने आविष्कृत किया और उसे संसार भर में बाँटा। आज मनुष्य जाति के पास बहुत साधन हैं, उनकी सहायता से नित नये वैज्ञानिक आविष्कार करना उतना कठिन नहीं है जितना कि अति प्राचीन काल में जब कि साधनों का बिलकुल अभाव था छोटा मोटा आविष्कार करना भी कठिन है। अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर हार्बल ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने, उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का आविष्कार किया उसका मस्तिष्क आज के परमाणु अन्वेषक वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।

हिन्दू जाति में अपनी एक दैवी विशेषता है, जिसके कारण उसने सृष्टि के आरंभ से ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अपने गुणों के कारण युगों तक उसने समस्त भूमण्डल पर एक छत्र चक्रवर्ती राज्य किया है। इस शासन के लिए उसे आज के साम्राज्य वादियों की नीति अपनाने की न तो आवश्यकता थी न इच्छा। ... वितरण करने के लिए यहां के नर रत्न सुदूर देशों को परमार्थ भावना से जाते थे। वे जहां जाते थे वहां की जनता उन्हें देव दूत के रूप में देखती थी और अपनी उन्नति, सुरक्षा, तथा सुख शान्ति के लिए सर्वोच्च सम्मान के साथ अपने यहां रख लेती थी। यही आर्य साम्राज्य था। लूट खसोट एवं शोषण जैसा कोई प्रश्न ही उनके सामने न होता था। लोक सेवा ही उस शासन की नींव होती थी। राम ने रावण का संहार किया पर सोने की लंका में से एक लोहे की कील भी वे अयोध्या न लाये। लंका की राज्य लक्ष्मी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उसे उन्होंने बदले हुए शासक विभीषण को ज्यों की त्यों सौंपदी। ऐसा परमार्थ एवं लोकहित से प्रेरित आर्य साम्राज्य समस्त भूमंडल तक फैला हुआ था।

भारतवर्ष को संसार के निवासी स्वर्ग कहते थे। इस स्वर्ग का शासक 'इन्द्र' कहलाता था। यहां के निवासी सुर या देवता कहलाते थे। तेतीस कोटि देवताओं का तात्पर्य यहाँ के निवासी तेतीस करोड़ देवोपम सभ्य, सुसंस्कृत, सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्यों से है। यह देवता संसार भर में स्वर्गीय दूत की तरह सम्मानित होते थे पूजे जाते थे। ऐरावत हाथी, कामधेनु गौएं, अमृत सी औषधियां, चित्त नन्दन वन उपवन, नृत्य संगीत पारंगत अप्सराएं, गन्धर्व, किन्नर, धनाधिप कुबेर, विद्या के भण्डार सुरगुरु बृहस्पति, विज्ञानाचार्य शुक्र इसी लोक में थे। वज्र (बिजली) के अस्त्र शस्त्र इन सुरों के ही पास थे। इस प्रकार एक समय यह भारतभूमि स्वर्ग भूमि कहलाती थी। उसका गौरव सर्वोपरि था।

इस गौरव का कारण थे आर्यों के जातीय गुण। अपनी विशेषताओं के कारण उन्होंने सम्पन्नता प्राप्त की थी। जगद्गुरु, और चक्रवर्ती शासक के रूप में उनने संसार की आत्मिक और भौतिक नेतृत्व करने का सम्मान

वरद पुत्र कह लाए। धन, विद्या और पराक्रम में उनका साथी दूसरा न था। अपने इन गुणों के कारण इस देश का प्रत्येक निवासी स्वर्गीय सुखों को भोगता हुआ जीवन व्यतीत करता था। आज हमारी वह दशा नहीं रही, तो भी पुरातत्व विज्ञान भूगर्भ विज्ञान, नृविज्ञान, एवं इतिहास के पंडित एक स्वर से यह बता रहे हैं, कि सभ्यता का आदि स्रोत भारत से ही प्रवाहित हुआ। निखिल भूमंडल की प्रजा को आर्य जाति ने ही संस्कृति एवं सभ्यता का पाठ पढ़ाया, जीवनोपयोगी अनेकों विज्ञानों की शिक्षा देकर, उन्नति, समृद्धि और सुख शान्ति के पथ पर अग्रसर किया।

आज भी हमारे पूर्वजों के यश एवं गौरव की धवल ध्वजा फहरा रही है। जैसे नर रत्न इस वीर भूमि ने प्रसव किये, वैसे अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ते। नाम गिनाने का अवसर नहीं, हमारे इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ एक से एक बढ़ कर, अनुपम नर रत्नों के गौरव से जगमगा रहा है। हमारी प्राचीन गौरव गरिमा आज एक चुनौती के समान हमारे सामने खड़ी है।

पर आज हमने उस नेतृत्व को गंवादिया। उन अपनी जातीय विशेषताओं को खो बैठे जिनके कारण देव कहलाते थे, देवदूत की तरह सर्वत्र आदर पाते थे। इस संसार में ईश्वरीय विधान ऐसा ही है कि जो जिस वस्तु का पात्र है वह उसे मिलता है। पात्रता एक ऐसी अविचल कसौटी है जिस पर कसकर लोगों को वह वस्तुएं परमात्मा दिया करता है जिसके वे अधिकारी हैं। रोगी को मोंठ का पानी पीते, पहलवानों को हलुआ रबड़ी खाते हुए हम नित्य देखते हैं। निर्बुद्धियों को घेंटी की तरह लदते और बुद्धिमानों को शासन करते हुए देखा जाता है, सद्गुणियों की प्रशंसा और दुष्ट दुराचारियों की निंदा सुनाई पड़ती है, "चींटी को कन भर और हाथी को मन भर" भोजन नित्य मिल जाता है। निर्बल पिसते और सबलमौज उड़ाते चारों ओर दीखते हैं। जिसके पास जितना, शरीर बल, बुद्धिबल, जनबल चातुर्यबल, आत्मबल है वह उसी अनुपात से सुसम्पन्न बनता है। आज भी योरोप अमेरिका के निवासी स्वस्थ, दीर्घजीवी, धनी, विद्वान एवं साधन सम्पन्न हैं, उनकी तुलना में हम भारत वासी अनेक दृष्टियों से पीछे हैं। अविद्या, अज्ञान, अस्वस्थता, गरीबी, बेकारी से हम लोग परेशान हैं। नाना विधि शोषण, उत्पीड़न, बन्धन अपमान सहते सहते तो हजार वर्ष होने को आये। आज स्वाधीनता मिलरही है तो उसका बोझ उठाने के लिए कंधों की बलिष्ठता और पचाने के लिए जठराग्नि उत्साह वर्धक जवाब नहीं देरही हैं। नीतिकारों का वचन है कि वैभव को सुरक्षित रखने की क्षमता जिसमें नहीं है उसके पास लक्ष्मी का अधिक समय ठहरना कठिन है।

अपने प्राचीन गौरव को खोकर पिछले एक हजार वर्ष में मुट्ठी भर विदेशियों और विधर्मियों द्वारा नाना प्रकार से पददलित और पीड़ित होना पड़ा, इसका कारण इन आक्रमण कारियों की बलिष्ठता या परिस्थितियों की विलक्षणता नहीं वरन् हमारी भीतरी दुर्बलता थी जिसने अपने आकर्षण से अपने शिर पर आपदाओं की काली घटाएं घुमड़ाईं। यही कमजोरियाँ हैं— जो अल्प संख्यक कहे जाने वालों से जगह जगह हमें पिटवाती हैं। अन्यथा यदि हमारा जातीय शरीर स्वस्थ रहा होता तो उसकी समर्थता देखते ही अल्प संख्यक वस्तुस्थिति को ठीक प्रकार समझते और आक्रमणकारी बनने की अपेक्षा कृपा पात्र बनने में अधिक लाभ देखते। पर आज दूसरी ही स्थिति है बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के प्रसन्न करने के लिए सिर के बल चलना पड़ रहा है और धरती पर नाक रगड़नी पड़ रही है, फिर भी कुछ प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दीखता। परिस्थिति संभलने में नहीं आती। इसमें दोष अल्पसंख्यकों का नहीं है, उन पर कोई आरोप लगाना भी व्यर्थ है, यह तो सृष्टि का अनादि नियम है। बेचारी मधु मक्खियों को मार कर उनका छत्ता लूटने का लोभ भला कौन त्याग

सकता है ? मधुमक्खियों के नाना विधि प्रस्ताव, भाषण, वक्तव्य, लेख, अपील, समझौते उनके प्राणों की, घर की, मधु की रक्षा नहीं कर सकते। किसी एक मधु लोभी को मक्खियां किसी प्रकार मना भी लें तो इसकी क्या गारंटी है कि अन्य कोई मधुलोभी न आधमकेगा ?

इस बात में दो मत नहीं होसकते कि हमने अपने प्राचीन गौरव को अपनी निर्बलताओं के कारण खोया और एक लम्बे समय से वैसी ही यातनाऐं भुगतते चले आरहे हैं जैसी कि जर्जर शरीर, रोग ग्रस्त, शय्या सेवी, असहाय अभागों को भुगतनी पड़ती हैं। आज भी वह कमजोरी हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है, फल स्वरूप पराधीनता के बन्धन शिथिल होते ही-गृह युद्ध की लपटें उठने लगी हैं । इसमें कितने ही फूल से कोमल बालक बालिकाऐं, बहिनें बेटियां, एवं निरपराध व्यक्ति झुलस गये, लुट मिट गये, और न जाने अभी कितनी यातनायें सहनी शेष हैं। यह हत्यारी कमजोरी सर्व भक्षी डायन की तरह हमारे पीछे मुंह फाड़ कर दांत निकाल कर विकराल रूप से दौड़ी आरही है। भागने से, उसकी ओर से आंखें बन्द करने से, काम न चलेगा। यदि अपने प्राण बचाने हैं तो इससे लड़ना होगा, परास्त करना होगा अन्यथा निश्चित समझिए कल नहीं तो परसों वह हमारा नाम निशान मिटाकर छोड़ेगी।

पिछले पचास वर्षों में राष्ट्रीय महासभा-कांग्रेस-ने राजनैतिक शक्ति संचार का प्रयत्न किया है। उस प्रयत्न से फल स्वरूप सर्वसाधारण में से हीनता और भय की भावना किसी कदर कम हुई है। राजनैतिक क्षेत्र में कितने ही व्यक्तियों ने प्रशंसनीय त्याग भी किये हैं । इस थोड़ी सी शक्ति का ही यह परिणाम हुआ कि विदेशी शासकों को यह दीख गया कि जिस शिला के ऊपर हम बैठे थे वह डिगमिगा रही है इसलिए उनने औंधे मुंह गिर पड़ने से पूर्व ही अपना स्थान खालीकर देने की दूरदर्शिता से काम लिया है और शासन सत्ता हमारे हाथ में आगई है। परन्तु इस परिवर्तन से यह अन्दाज न लगा लेना चाहिये कि हमने उचित जातीय बल को प्राप्त कर लिया है, अभी उसमें भारी कमी है। उस कमी के कारण ही "स्वर्ग से गिरा अमर फल आकाश में ही लटक गया" वाली कहावत के अनुसार, स्वाधीनता से प्राप्त होने वाले सुखों से हमें वंचित ही रहना पड़ रहा है ।। अब चेतना का युग आरंभ होरहा है, हमारे भाग्य ने करवट ली है। इस संक्रान्ति वेला में आइए विचार करें कि— हम क्या थे ? क्या से क्या होगये ?. कितने दीर्घ काल तक अंधकार के गहरे गर्त में पड़े रहे ?. किन नगण्य शक्तियों के तुच्छ अंकुश से हमारा जातीय एरावत बन्दर की तरह नाचता रहा ?. और आज भी हमारे पास अपार साधन होते हुए भी ऐसी हीन दशा का अनुभव करना पड़ रहा है? भूलोंसे शिक्षा ग्रहण करते हुए, अज्ञान की निद्रा से उठना होगा और पुनः अपने उसी प्राचीन महान गौरव को प्राप्त करना होगा । यह सुनिश्चित है कि हिन्दू जाति में एक दैवी विशेषता है। संसार के इतिहास में अनेकों जातियों का उद्भव हुआ और वे नष्ट होगईं उनका कहीं अता पता भी नहीं है, पर यह हिन्दू जाति ही है जिसने बड़े बड़े बुरे और भले समय देखे हैं पर अभी तक जीवित है । पराधीन और पददलित होते हुए भी उसकी कोख से गांधी और जवाहर जैसे नर रत्न पैदा होते हैं। हम महान थे आज गिर गयेहैं तो भी हमारा भविष्य महान है। ——

सूचना—आज हमारी संस्कृति जाति और मातृभूमि के सामने जीवन मरण की समस्यायें उपस्थित हैं। इन समस्याओं के सम्बन्ध में हम सबको गंभीरता पूर्वक विचार करने की और समुचित हल निकाल कर सुदृढ़ मार्ग अपनाने की आवश्यकता है। अखंडज्योति अपने परिवार से विचार विनिमय करके सामूहिक विचारोंका निचोड आगामी अंकमें उपस्थित करेगी। पाठक प्रतीक्षाकरें।

'लीजिए आप पीजिए' का चस्का

नशेबाजी पहले पहले शौक में शुरू होती है। नौसिखिया पीने वाला यह नहीं समझता कि इसके कोई लाभ भी है। दोस्त लोग उसे चस्का लगाते हैं। "लीजिए आप पीजिए" के साथ मुफ्त में नशे की एक खुराक भेंट की जाती है। पीने वाला एक कौतूहल, उमंग के साथ उसे पीता है। थोड़े दिन ऐसे ही सिलसिला चलता है, बाद में वह नशा, उसके स्नायु तन्तुओं पर कब्जा करके अपने वश में कर लेता है। फिर छोड़ना मुश्किल पड़ता है। समय पर नशा न मिले तो बेचैनी उठ खड़ी होती है।

नशेबाजी का शौक लगाने के लिए "लीजिए, आप पीजिए" का सत्कार एक ऐसी शैतानी माया है जिसकी भयंकरता को कहने वाला और स्वीकार करने वाला दोनों ही नहीं जानते। पर शैतान अपनी सफलता पर खड़ा खड़ा हंसता है कि मेरी जीत होरही है और यह दोनों मूर्ख खुशी खुशी मेरा काम कर रहे हैं।

तमाखू को ही लीजिए। बीड़ी, सिगरेट सिगार, हुक्का, सुंघनी, जर्दा आदि के रूप में इसका आजकल अत्यधिक प्रचलन है। अधिकांश लोग इसके चगुल में फंस कर अपने स्वास्थ्य और धन की होली फूंकते रहते हैं।

... सकता था। परन्तु नशेबाजी ऐसा करने दे तब न!

तमाखू पीने से स्वास्थ्य पर कितना घातक असर पड़ता है इसके लिए संसार के कुछ अत्यंत लब्धप्रतिष्ठ और ख्याति नामा डाक्टरों की सम्मतियां नीचे दीजाती हैं—

डाक्टर केलॉग लिखते हैं—किसी वस्तु को शरीर में सर्वत्र व्याप्त करने का सबसे सरल तरीका उसका धुंआ लेना है। तमाखू का धुंआ फेंफड़ों में जाता है और उसकी दीवारों में से छनकर अन्य अंग प्रत्यंगों पर अपना प्रभाव डालता है। दिल में आने जाने वाले खून को वह धुआं अपना जहर बराबर देता रहता है फल स्वरूप खून के शुद्ध और सजीव परमाणु अशुद्ध और मूर्छित होजाते हैं।

डाक्टर रिचर्डसन लिखते हैं—तमाखू पीने वाले के पेट के भीतर कोमलत्वचात्मक भीतरी आवरण पर गोल गोल दाग पड़ जाते हैं। खून पतला होजाता है। फेफड़े कमजोर होजाते हैं। हृदय की स्वाभाविक धड़कन के स्थान पर एक प्रकार का कम्प शुरू होजाता है।

डाक्टर फूट का कथन है-नपुंसकता के कारणों में तमाखू पीना एक मुख्य कारण है। मेरे पास गुप्त रोगों का इलाज कराने कितने ही रोगी आते हैं। मैं उनसे कह देता हूं कि दो में से एक बात पसंद करलो—पुंसत्व या तमाखू। तमाखू से प्यार हो तो काम सेवन की ... निराशा होजाओ।